4

वेदभाष्य की पद्धति

प्रस्तावना

इस पाठ में वेद मन्त्रों का अर्थ कैसे किया जाता है इस विषय में संक्षेप में आलोचना प्रस्तुत है। निरुक्तकार आदि वेद के अर्थ कैसे प्रतिपादित करते हैं उसको भी यहां वर्णित किया है। वेद की कौन सी पद्धतियाँ है जिनसे विद्वान वेद मन्त्रों की व्याख्या की है, भारतीय पद्धति आध्यात्मिक पद्धति तथा पाश्चात्य पद्धति। और फिर कौत्स महोदय के पूर्व पक्ष तथा यास्क महोदय सिद्धान्त पक्ष यहां आलोचित है। विभिन्न व्याख्या में सायण प्रतिपादित भाष्य का कहीं सर्वातिशय है क्यों? पाश्चात्य पौरस्त्य सभी इसी का मत स्वीकार करते है इत्यादि का यहां अच्छी प्रकार उल्लेख किया गया है। अरविन्द का विशिष्ट मत को तथा श्रीमदानन्द कुमार की विशिष्ट व्याख्यान शैली वर्णित है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- मन्त्र व्याख्या की तीन पद्धतियां जान पाने में;
- पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष से कौत्स और यास्क के मत को जान पाने में;
- निरुक्त के विषय में जान पाने में;
- सायण भाष्य के महत्त्व को जान पाने में;
- अरविन्द के तथा आनन्द कुमार के मतों से अवगत हो पाने में।

टिप्पणी

4.1 भारतीय पद्धति

भाषाविज्ञान पण्डितों के मत में आर्यभाषा से मेटिक भाषा दो भाषा के लोगों ने सभ्यता और संस्कृति का निर्माण किया। आर्य भाषा भी पाश्चात्य-पौरस्त्य भेद से द्विविध है। इस आर्य भाषा के पाश्चात्य प्रभेद में यूरोपीय देश की प्राचीन और आधुनिक ग्रीक-लैटिन-फ्रेंच-जर्मन-आङ्ग्ल प्रभृति भाषाएँ सम्मिलित है। आर्य भाषा के पौरस्त्य भेद में ईरानी भाषा और संस्कृत भाषा सम्मलित है। ईरानी भाषा जेन्द-अवेस्ता-नाम से जानी जाती है, जिसमे पारसीयों के धर्म ग्रन्थ निबद्ध है। संस्कृत भाषा में भारतीय धर्म ग्रन्थ निबद्ध है।

कालक्रम से अत्यन्त अतीत काल में निर्मित किसी ग्रन्थ का अवबोधन उसके उत्तर कालिक पाठकों के लिए अति दुरूह व्यापार होता है। प्राचीनता से भाव गाम्भीर्य, और भाषा की कठिनता भी आती है और तब तो यह और भी दुर्बोध्य हो जाती है। वेद तो वैसे भी पहले से स्वयं किसी दूरालोकगत अतीत काल की कृति है, और ऊपर से भाषा वैषम्य और विचार गाम्भीर्य। फलतः वेदार्थाऽवबोधन, गवेषण, और मर्मान्वेषण एक दुर्बोधप्रहेलिका हो गई। तथापि इस प्रहेलिका का अर्थावबोधन में उद्योग प्राचीन काल से ही होता आया है। यास्क महोदय के निरुक्त में इस उद्योग का कुछ आभास भी प्राप्त होता है - षड्भाव विकाराः भवन्तीति वार्ष्यायणिः। जायतेऽस्ति विपरिण मते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति। यास्क के कथनानुसार प्राचीन ऋषियों ने स्वकीय विशिष्ट तपोबल से धर्म का साक्षात्कार किया। और कुछ अर्वाचीन ऋषियों ने भी उस धर्म के साक्षात दर्शन करने का प्रयास नहीं किया। अपर कालिक ऋषियों की इस प्रकार की दुर्बलता को देखकर उन पर दयावश प्राचीन ऋषियों में मन्त्र का उपदेश ग्रन्थ और अर्थ उभय प्रकार से दिया। प्राचीन ऋषियों ने तो बिना श्रवण के ही धर्मो का साक्षात दर्शन किया। अतः धर्म के साक्षा दर्शन करने से उनका ऋषित्व स्वतःसिद्ध ही है और कुछ अर्वाचीन ऋषियों ने तो ग्रन्थ रूप से और अर्थ रूप से श्रवण किया तत्पश्चात् वे धर्मदर्शन के कर्ता कहलाये। अतः श्रवण के बाद दर्शन की योग्यता सम्पादन से इन ऋषियों द्वारा उपयुक्त वाणी 'श्रुतर्षि' कहलायी। अवरेभ्योऽवरलिकेभ्योः शक्तिहीनेभ्यः श्रुतर्षिभ्यः। तेषां हि श्रुत्वा तत्पश्चादृषित्वमुप जायते न यथा पूर्वेषां साक्षात्कृद्धर्माणां 'श्रवणमन्तरेणैव' (दूर्गाचार्यः)। ये श्रुतियां ऋषियों ने लोकहित के लिए तथा वेदार्थाव बोधन के प्रयोक्तओं के लिए शिक्षा-निरुक्त-वेदाङ्गादी की रचना की। आधुनिक लोग तो वेदार्थ की दुरूहता पर अंगुली उठाते हुए दोषारोपण करके वेदार्थ को यथा नहीं भूले, वेद मूलक आचार धर्म से विमुख न हो इस विषय में समुन्नत भावना से प्रेरित थे। प्राचीन ऋषि वेदार्थोपदेश के लिए सतत जागरूक थे। यास्क महोदय ने भी कहा है - **'साक्षात्कृद्धर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्राहुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं वेदञ्च् वेदाङ्गानि च।'।**

वैदिकशब्दों का अर्थ के तात्पर्य बोधन के लिए बहुत पण्डितों ने उस प्रकार चेष्टा की।

आजकल उपलब्ध यास्क विरचित निरुक्त से भी प्राचीनतर निघण्टु ग्रन्थ है, वहां वैदिक शब्दों की विस्तृत व्याख्या है। निघण्टु शब्द का भी अर्थ होता है शब्दानां सूची', निघण्टु ग्रन्थ में संहिता के कठिन और संदिग्ध अर्थ शब्दों को संकलित कर उनके अर्थ विशेष की सूचना प्राप्त होती है। समुपलब्ध ग्रन्थों के केवल निघण्टु ग्रन्थ में ही वेदार्थस्फुटी करण का प्रथम प्रयास परिलक्षित होता है। प्रातिशाख्य की रचना उसके उत्तरकाल में ही हुई। इन ग्रन्थो में वैदिक भाषा के विचित्र पद, स्वर और सन्धि पदों का ही विवेचन है। साक्षात् रूप पदार्थ पर्यालोचन के इस ग्रन्थ में नितान्त ही अभाव है। प्राचीन अनेक निरुक्त ग्रन्थों की सत्ता थी। जिसकी सूचना अन्य ग्रन्थो में यत्र तत्र उद्धरण रूप में समुपलब्ध है। उसको लेकर आज भी वेदार्थ विवेचन के सर्वाधिक गौरवशालि ग्रन्थ यास्क विरचित निरुक्त ही है। इस ग्रन्थ रत्न के परीक्षण से अनेक प्रकार के ज्ञातव्य विषयों का पर्याप्त बोध होता हो। इस ग्रन्थ में यत्र तत्र यास्क महोदय ने आग्रायण-औपमन्यव-कात्थक्य-शाकटायन-शाकपूणि-शाकल्यादि अनेक निरुक्ताचार्यों का ऐतिहासिक याज्ञिक-नैदान प्रभृति-व्याख्याकार का क्रमशः व्यक्ति रूप में और सामूहिक रूप से उल्लेख समादर पूर्वक किया। इससे यह ज्ञात होता है कि वेदार्थानुशीलन की परम्परा अतीव प्राचीनकाल से ही चली आ रही है।

यास्क द्वारा स्वनिरुक्त में (1/15) किसी कौत्स नामक आचार्य का मत उल्लिखित है। न जाने कौत्सनामक कोई आचार्य थे या नहीं। वस्तुतः ये कौत्स कोई ऐतिहासिक पुरुष थे अथवा केवल पूर्वपक्ष निमित्त से स्थापित कोई यास्क की कल्पना प्रसूत व्यक्ति थे। कौत्स महोदय का मत है कि मन्त्र निरर्थक होते है। इस कथन के पुष्टि के लिए वहां अनेक विधि से असारयुक्तियाँ प्रदर्शित की। कौत्स मत ही परिवर्तित चार्वाक-बौद्ध-जैन-अनेक वेदनिन्द कों ने स्वीकृत की।

4.2 कौत्स का पूर्वपक्ष

1. जैसे मन्त्रों के पद नियत है, तथैव शब्द क्रम भी नियत ही है। यह सामवेद का प्रथम मन्त्र है- 'अग्न आयाहि वीतये' इति। ये पद विपरीत क्रम में - 'वह्वेः आगच्छ पानाय' ऐसा नहीं कह सकते। यहां अनुपूर्वीय क्रम भी नियत ही है। पूर्वोक्त मन्त्र में व्यवस्थापित किया है - 'अग्न आयाहि' यहाँ पदक्रम को परिवर्तन - व्यातिक्रम से - 'आयाह्यग्ने' ऐसा भी नहीं कह सकते है। इसका नियत और आनुपूर्व्य अर्थ क्या है। यदि मन्त्र सार्थक हो तो उनके पदों का पदक्रम का भी परिवर्तन सार्थकवाक्य शैली भी सर्वथा तर्कसंगत हो। इस प्रकार 'नियतवाचोयुक्तयः, नियतानुपूर्व्याः भवन्ति।' (नि.1/5/2)

2. यहाँ ब्राह्मण वाक्यों द्वारा मन्त्रों का विनियोग विशिष्टानुष्ठानों में होता है। यथा- (शु.य. 1/22) 'ऊरूप्रथस्व' इस मन्त्र का विनियोग प्रथमकर्म में, और विस्तार कार्य में शतपथ ब्राह्मण करता है। यदि मन्त्रों में अर्थद्योतन की क्षमता होती तो स्वतःसिद्घ अर्थ और मन्त्र के ब्राह्मण ग्रन्थ से विनियोग दर्शन की अपेक्षा कैसे होती। निरुक्त

में कहा है - अथापि ब्राह्मणेन रूपसम्पन्नाः विधीयन्ते। 'ऊरूप्रथस्व' इति प्रथयति। 'प्रोहाणि' इति प्रोहति' (नि. 1/5/1)।

3. मन्त्रों का अर्थ अनुपपन्न होता है, अर्थात यह उत्पत्ति या युक्ति से यह सिद्ध नहीं हो सकता है। यजमान कहता है - 'औषधे! त्रायस्व एनम्' अर्थात् हे औषधे! तु इस की रक्षा कर। औषधि तो स्वय ही निर्जीव होती है। वो तो स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ है वो वृक्ष की रक्षा कैसे कर सकती है। यजमान स्वयं परशु से वृक्ष के ऊपर प्रहार करता है और कहता है - हे परशु ! तु इस वृक्ष को मत काट - 'इससे अनुपपन्न अर्थ होते है। औषधे त्रायस्व एनम्। स्वधीते मा एनं हिंसीः, इत्यहं हिंसन्' (नि.1/5/1)। यजमान स्वयं जिसके ऊपर प्रहार करता है उसी की रक्षा के लिए प्रार्थना भी करता है। इसीलिए मन्त्र अनुपपन्नार्थ होते है।

4. वैदिक मन्त्रों में परस्पर विरोध भी दृष्टि गोचर होता है। रुद्र विषय में यह द्रष्टव्य मन्त्र है - 'एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः' (तैत्ति.सं. 1/8/6/1)। रुद्र एक ही है कोई अन्य नहीं ऐसा प्रतिपादित होता है। यहीं द्वितीय मन्त्र रुद्र का अनेकत्व प्रतिपादित करता है। यथा- 'असंख्यानां सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्' (तैत्ति.सं. 4/8/6/1)। अर्थात इस धरा पर असंख्य रुद्र है। इस प्रकार से एकता और अनेकता में सन्देह से रुद्र के विषय में किसी भी तथ्य का निर्णय सम्भव नहीं है। (अथापि विप्रतिषिद्धार्थाः मन्त्राः भवन्ति)

5. वैदिकमन्त्रों में कार्य विशेष के अनुष्ठान के लिए अर्थ ज्ञान कुशल पुरुषों की भागीदारी होती है। यथा होता को कहते है कि - 'अग्नये समिध्यमानाय अनुब्रुहि' (श. ब्रा. 1/3/2/3)। अर्थात् प्रज्ज्वलित अग्नि के लिए दो। होता स्वकर्म में निरत होने पर उसके नियोजन के लिए यह उक्ति निरर्थक होती है।

4.3 यास्क का सिद्धान्तपक्ष

1. लौकिक भाषा में भी पदों का नियत प्रयोग होने पर उसके पदक्रम का नियत रूप दृष्टि गोचर होता है। यथा- इन्द्राणी एवं पितापुत्रौ। इन दोनों के प्रयोग में न तो क्रमभंग कर सकते है और न ही शब्द परिवर्त्तन ही कर सकते है। इस प्रकार नियमाभाव से भी इन शब्दों की सार्थकता स्वतःसिद्ध होती है।

2. ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों का विनियोग विधन मुद्रितानुवाद मात्र ही है, अर्थात् मन्त्रों में अर्थ प्रतिपादन अभीष्ट होता है उसी अर्थ का अनुवाद ब्राह्मण ग्रन्थों में है।

3. वैदिक वेद मन्त्रों का अर्थ अनुपन्न नहीं है। परशुप्रहार काल में जो अहिंसा की चर्चा है वह भी वेदविहित है। परशु द्वारा वृक्षछेदन अपराध होने से हिंसा का द्योतक अवश्य है क्यों कि वेद से ही यह ज्ञात होता है कि परशुछेदन हिंसा का द्योतक नही है। जिस कर्म में पुरुष वेद द्वारा नियुक्त होता है, वह कर्म अहिंसात्मक होता

है। औषधि-पशु-मृग-वनस्पति जैसे अनेक यज्ञ में उपयोग होते है। उससे वे परमोत्कर्ष को प्राप्त करते है। अत: यज्ञ में इनका विधान अभ्युदय प्रदायक होता है न की हिंसात्मक। इस प्रकार किसी भी वृक्ष का यज्ञार्थ विधि पूर्वक शाखच्छेदन का अनुग्रह ही है न की हिंसा का। ये हिंसा- ये हिंसा ऐसा कहने से यह प्रतीत होता है। प्रत्येक विशिष्ट वैदिक को कहने के लिए यह विधान है। इस प्रकार से अन्य आगमनों को भी जानना चाहिए। अनुगृह्णाति यज्ञविनियोगार्थं विधानत: छिन्दन् (दुर्गाचार्य:, निरुक्तस्य टीका 1/16/6)।

4. मन्त्रों में ही रुद्र का एकत्व है। किसी अनेकत्व का उल्लेख में भी पारस्परिक विरोध नहीं है क्योकि देव महिमशाली होते है। एकत्व में भी वे अनेक प्रकार से वर्तमान होते है। यथा इन्द्र अजातशत्रु है अर्थात् जिसका कोई शत्रु उत्पन्न नही हुआ है,। वैसे तो इद्र शत्रु का विजेता है ऐसा भी कह सकते है, इसमें कोई दोष नहीं है। ये वर्ण रूपकाश्रित कल्पना में ऊपर रखा गया है। लोक में भी शत्रुरहित भी राजा शत्रुहीन कहलाता है।

5. यज्ञानुष्ठान में परिचित भी सम्प्रेषण अव्यर्थ नहीं बोल सकता है। क्योंकि विशिष्ट अतिथि के आगमन पर मधुपर्कदान सर्वविदित है, फिर भी लोक व्यवहार में भी विधिपुरुष से तीन बार मधुपर्क याचना होती है। उसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ की भी सम्प्रेषणा निरर्थक नहीं है।

पाठगत प्रश्न

458. आर्य भाषा कितने प्रकार की है ?

459. भारतीय धर्म ग्रन्थ किस भाषा में लिखित है ?

460. श्रुतर्षि किसका नाम है ?

461. निरुक्तकार कौन है ?

462. निर्घण्टु शब्द का क्या अर्थ है ?

463. आधुनिक जनों को वेदार्थ अवगमन में कहाँ कमजोरी है ?

464. एक निरुक्त टीकाकार का नाम लिखो ?

4.4 पाश्चात्यपद्धति

वेदार्थानुसन्धान विषय में आजकल प्रधानतया तीन मत है, जिनमें प्रथम पाश्चात्य वैदिकार्थ अनुसन्धान्कर्ताओं का मत है। अन्य दो मत भारतीय विद्वान् के ही है। पाश्चात्य पण्डितों के मतानुसार वेदार्थानुशीलन के लिए तुलनात्मक भाषाशास्त्र का और ऐतिहासिक ग्रन्थ का अध्ययन भी अतीव आवश्यक है। भारत के अलावा दुसरे देशों के लोगों का आचार

व्यवहार का ज्ञान भी वेदार्थानुसन्धान में आवश्यक है। जिससे इन दोनों का पारस्परिक तुलना से ही हमारे वैदिक धर्म का मूल स्वरूप का परिचय हो सकता है। इसी कारण से यह ऐतिहासिक पद्धति (History method) इति नाम से विख्यात हुई। भारतीय परम्परा के प्रति वैदेशिक विद्वान उदासीन ही है। अत: वे आङ्गल विद्वांन ब्राह्मण टीका पर आक्षेप करते है। राथ जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वान भारतीय पण्डितों को वेदार्थानुसन्धान में सर्वथा अयोग्य ही मानते है। वे पाश्चात्य पण्डितों को ही योग्य मानते है, जो भारतीय परम्परा को बिलकुल भी नहीं जानते केवल भाषा शास्त्र मानव शास्त्र जैसे अनेक विषयों को ही जानते है।

इस पद्धति में अनेक गुण है किन्तु बहुविध अवगुण भी है। वेदो का आविर्भाव इसी आर्यावर्त में हुआ। वेदनिहित तत्त्व को आश्रित्य कर कालान्तर में स्मृत्यादि ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। वेद भारतीयों की अपनी समृद्धि है। ऋषि आत्मज्ञानी विद्वांनों को और तत्त्वद्रष्टा और महर्षि ने वेदों का दर्शन जैसे किया वैसे ही उनका अनुशीलन हमारा कर्त्तव्य है। उसी रूप में उनके गूढार्थ अवबोधन ही वेद के अर्थ वास्तविक अनुशीलन है ऐसा कह सकते हैं। वेद से भारतीयता का निस्वार्थ भारतेतर धर्म से और विज्ञान की सहायता लेकर उसके अर्थावबोधन का दु:साहस मूल में कुठाराघात ही है अन्य कुछ नहीं। इस प्रकार से वेदो का अर्थ करके वैदिकाचार्य के विषय में उन्मादवत्प्रलाप किसी भी तरह उचित नही है। उदाहरणार्थ हम यहाँ एक शब्द का परीक्षण करते है।

वैदिकयुग में इस देश में लिङ्ग पूजा प्रचलित थी या नही इस विषय में ये पाश्चात्य पण्डित बड़े ही कोलाहल से अपने सिद्धान्त को स्थापित किया जो कि बालकों के लिए भी उपहसन योग्य है। 'शिश्नदेव:' इस पद का प्रयोग ऋग्वेद में (7/21/5, 10/99/3) दो स्थान पर मिलता है। पाश्चात्य विद्वान इस शब्द का उत्तरभाग को अभिधप्रधान मानकर अपने सिद्धान्त को रखकर कहते है कि वैदिक काल में भी इस देश में लिङ्गपूजा का प्रचलन था। परन्तु यहां इस शब्द का वास्तविकार्थ वैसा नही है। वस्तुत: देवशब्द आलंकारिक है यहाँ। वेद में अन्यत्र प्रयुक्त पितृदेव-मातृदेव-आचार्यदेव अनेक शब्द तथैव है। यहाँ देवशब्द का अर्थ 'पूजक' ही होता है न की अन्य। तैत्तिरीयोपनिषदि (1/1) प्रयुक्त- मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यो देवो भव इत्यादि शब्दों के अर्थ होते हैं- माता को देवता की तरह पूजें, पिता को देवता की तरह पूजें, आचार्य को देवता की तरह पूजें। इन शब्दों के व्याख्या के अवसर पर आचार्य शङ्कर कहते है कि - देवतावत् उपास्या: एते ऐसा अर्थ है। श्रद्धा देव ये शब्द भी शिश्नदेव से भिन्न नहीं है। यहाँ दोनों जगह 'देव'-शब्द का प्रयोग आलंकारिक ही है। ऐसी स्थिति में शिश्नदेव का भी अर्थ होता है - शिश्न: (लिङ्ग:) देवता अस्ति अस्येति, अर्थात् कामक्रीडा में नियत पुरुष। अत्र पण्डिता: अस्य परम्परागतार्थअब्रह्मचर्य' ऐसा अर्थ स्वीकार करते है। और कुछ पाश्चात्य विद्वांन यहाँ प्रयोगमूलक परम्परागत अर्थ की उपेक्षा करके निर्मूल अप्रामाणिक सिद्धान्त को ग्रहण करते है। इसी प्रकार पारस्करगृहसूत्र 'कूर्मपित्तमङ्के निधय जपति' इस वाक्य में प्रयुक्त कूर्मपित्त शब्द का परम्परागतार्थ जल पूर्ण घट का उपहास करके जर्मन विद्वान् ओल्डनवर्ग महोदय ने 'कच्छपपित्तं क्रोडे निधाय' ये अर्थ किया।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न

465. कुछ पाश्चात्य विद्वानों के नाम लिखो।

466. कूर्मपित्त शब्द का परम्परागत अर्थ क्या है ?

4.5 आध्यात्मिक पद्धति

स्वामी दयानन्द सरस्वती-महोदय ने कुछ विशिष्ट व्याख्याकारों की चर्चा स्वभाष्य में करते है। वेदों का अनादित्व सिद्धान्त अपने भाष्य में प्रतिपादित किया गया इस विद्वान् द्वारा। इस महापुरुष के विचार में वेद में लौकिक इतिहास का सर्वथा अभाव ही है। वेद में प्रयुक्त सभी शब्द यौगिक और योग रूढ है। इन्द्र अग्नि वरुणादि ये देवता वाचक शब्द है सभी यौगिकत्व से ही परमात्मा के पर्यायवाची हैं। स्वामी जी का यह सिद्धान्त अंशतः समुचित ही लगता है। निरुक्त कर्ता तो स्पष्ट कहते है - जितने देव है वे सभी एक ही महान देव परमेश्वर के विशिष्ट शक्ति के प्रतीक स्वरूप है। **'महाभाग्यात् देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'** (निरुक्तः 7/4)। ऋग्वेद में तो इसका स्पष्ट प्रतिपादन है - **'एकं सद्विप्रा बहुध वदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः'** इति (ऋ.सं 1/164/46)। इसलिए अग्नि ऐश्वर्यशाली परमेश्वर का ही रूप है, और यही स्वीकार करना सर्वथा उचित ही है। यहाँ कोई विरोध नहीं है, क्योंकि जब इस शैली में अग्न्यादि देव का वर्णन होता है तब तो विरोध का अभ्युदय होता ही है।

वेद में देवताओं का विशिष्ट स्थान है। मानव सदा प्रकृति देवों की नाना लीला को देखता है, वैदिक काल के महर्षियों ने उनकी लीला के तत्त्व के आधार पर भिन्न देवता की कल्पना की है। महर्षियों का यह विश्वास है की इन देवों की अनुकम्पा से ही सभी कार्य संचालित होते है। जगत में चल रहे सभी प्रपञ्च का कारण भूत देव ही है। यास्क कहते है कि देवता में कुछ पृथिवी स्थानीय, कुछ अन्तरीक्ष स्थानीय, और कुछ द्यु स्थानीय है। पृथिवी स्थानीय देवता में अग्नि, अन्तरीक्ष स्थानीय में इन्द्र, द्युस्थानीय देवता में सूर्य विष्णु अनेक देव है। ऋग्वेद में भी देवता प्राण शक्ति के महत्त्व से 'असुर' कहलाते है। पाश्चात्यों का प्रधान देवों को उद्देश्य करके यह विचार है कि भौतिक घटना के उत्पन्न होने से प्राकृतिक दृश्यों को देवता के रूप में कल्पित किया है। ऋग्वेद के आदि के युग में बहुत देवताओ की सत्ता थी। समय के साथ मनोविकास के साथ लोगों ने देवता को उनका एक ही अधिपति की कल्पना कर ली। पुरुष सूक्त सर्वेश्वरवाद को स्पष्ट रूप से उपस्थापित करता है।

यास्क के निरुक्त में दैवत काण्ड में देवता स्वरूप का सुन्दरतया विवेचन किया गया है। जगत के मूल में एक ही महत्वशालिनी महाशक्ति शोभित होती है। वह निरतिशय-ऐश्वर्य शालिनी होने से 'ईश्वर' कहलाती है। वही शक्ति अनेक प्रकार से स्तुत होती है। और

ऐतरेयारण्यक एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसान्त- एतमग्नावधवर्यव एतं महाव्रते छन्दोगा:' इससे विद्वानों का कहा विचार ही परिपुष्ट होता है।

देवता प्राय: तीन रूप में होते है - आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। इन्द्रियगम्य रूप आधिभौतिक होता है, इन्द्रिय से अगम्य आधि दैविक और आध्यात्मिक होते है। 'विष्णुर्नुकं वीर्याणि.....।' 'प्रविष्णवे शूषमेतु।' 'मन्यगिरिरिक्षत उरुगायाय वृष्णे.....।' इत्यादि मन्त्र से वेद विष्णु देवता के कहे गये तीनों रूप प्रदर्शित होते हैं।

मानव उन देवता की शक्ति को भली भांति न जानते हुए उनके निवारण के लिए प्रयास करते है। इसीलिये श्रुति के आधार पर उसके रूपों को इसके साथ रखते है।

मन्त्र से देवों के न केवल एक ही अपितु बहुत रूप प्रतिपादित है। इस प्रकार से प्रतीच्य विद्वानों की उस बात पर कैसे विश्वास हो, जहां देवता भौतिक दृश्य के अधिष्ठातृ और प्रतीकत्व के रूप में परिकल्पित होते हैं। वेद वर्णित प्रमुख विषयों में देवता स्तुति भी एक प्रमुख विषय है।

इस विचार से अग्न्यादि शब्द न केवल परमेश्वर के ही वाचक है, अपितु उन-उन विशिष्ट देवों के भी वाचक है। अग्नि शब्द यहां भौतिक अग्निपद का बोधक है, जिस अग्नि की कृपा से इस चराचर जगत के सकल व्यवहार नियमित है। यह शब्द उस देव के भी सूचक है, जो इस भौतिकाग्नि में भी अधिष्ठित है। उसी के साथ यह शब्द इस जगत के नियामक परमात्मा के अर्थ को भी प्रकट करता है। अग्निदेव के ये तीन रूप भी समुचित ही है। अग्निमन्त्र के सूक्ष्म पर्यालोचन से सिद्ध होता है कि यह अग्नि मन्त्र ऊपर वर्णित अग्नि देव के तीनो रूपों को समभाव से बताता है। इसीलिए अग्नि देव के पूर्व वर्णित दो रूप देखकर अग्निपद परमपद के ही वाचक है ये मत तो प्राचीन परम्परा के सर्वथा विरुद्ध ही है। इसी कारण से इस शैली के सर्वथानुसरण से सर्वमान्य नहीं होता है।

स्वामी जीव महोदय ब्राह्मणग्रन्थों को संहिताग्रन्थ ही अनादित्व से और प्रामाणिकत्व से नहीं स्वीकृत करते हैं। श्रुति अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थों की गणना इसकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए संहिता के स्वरूप दृष्टी से स्वामी जी का यह सिद्धान्त अयथार्थ ही है। तैत्तिरीयसंहिता में मन्त्र के साथ ब्राह्मणांश का भी गद्यात्मक स्वरूप समुपलब्ध होता है। इस प्रकार से तैत्तिरीय संहिता का एक भाग श्रुति तथा अपरभाग अश्रुति सा ही लगता है। स्वामी के अनुयायि वैदिक पण्डितों के सम्मत में वेद में आधुनिक-भौतिक-विज्ञान के सभी आविष्कृत पदार्थ की सत्ता स्वीकृत है। तो क्या वेद का यह ही महत्त्व है कि, इन वेदों में वैज्ञानिक अविष्कृत सकल वस्तुओं का वर्णन समुपलब्ध होता है। वेद तो आध्यात्मिक ज्ञान की निधि है। भौतिक विज्ञान द्वारा आविष्कृत पदार्थों का वर्णन नही है वेद का प्रयोजन। ऐसा होने पर यौगिक प्रक्रियानुसार इनका भौतिक विज्ञान में आविष्कृत पदार्थ का वेद में अस्तित्व स्वीकरण उपयुक्त नही लगता है। अत: स्वामी जी की यह पद्धति सर्वांशत: एव स्वीकार्य नहीं हो सकती है।

वैदिक मन्त्र का अर्थ गूढ है, ऋषि प्रदर्शित मार्गानुसार आर्ष दृष्टी से ही मन्त्रार्थ जानने चाहिए। मन्त्र के शब्दों में व्याकरणजन्य सरलता होने पर भी, उनके अभिधेयार्थ का अन्वेषण और नितान्त दुरूह है। गूढार्थ प्रतीति के लिए इस मन्त्र का यह रहस्यवाद देखने योग्य है -

'चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्याम् आविवेश॥ -ऋ. 4/58/3

इस मन्त्र का सामान्य अर्थ है कि - इसके चार सींग, तीन पैर, दी सिर और सात हाथ है। तीन प्रकार से यह बद्ध वृषभ उच्च स्वर से कोलाहल करता है। महादेव मर्त्यलोक में प्रवेश करता है तथा कौन है यह महादेव वृषभ। यास्क ने इस मन्त्रार्थ का रहस्योद्घाटन किया - कुछ के मत में यह महादेव वृषभ यज्ञ है। चार वेद इसके चार शृङ्ग है, पद त्रैकालिक अनुष्ठान कर्म है, सिर प्रायणी-उदयनीय-नाम की दो हवि है। सप्त हस्त सप्तछन्द है, यह यज्ञ मन्त्र-ब्राह्मण-कल्प से त्रिधा बद्ध है। इस प्रकार से यज्ञ रूप में महादेव यजनार्थ मरणधार्मि में प्रविष्ट हुए। कुछ के मत में महादेव वृषभ सूर्य है, जिसकी चार दिशा ही चार शृङ्ग है, तीन वेद पातीन है, दिन और रात दो सिर है, और सात किरणसात हस्त है। सूर्य पृथिवी-आकाश-अन्तरिक्ष तीनों से सम्बद्ध है, और भी मतों यह सूर्य ग्रीष्म-वर्षा-शिशिर- ऋतु का उत्पादक, अत: इसको इस मन्त्र में 'त्रिधा बद्धः' कहा गया है (द्रष्ट.नि. 13/3)। पतञ्जलि के पस्पशाह्निक में इस मन्त्र की शाब्दिक व्याख्या समुपस्थापित है। उनके मत में तो यह महादेव शब्द है, जिससे इसके चत्वार शृङ्गचतुर्विधा शब्द है (नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपाताः), त्रीणि पदान्त के भूत-वर्तमान-भविष्यत तीनकाल है, दो प्रकार की भाषा, नित्या और कार्या दो सिर, सातहाथ से प्रथमा से सात तक विभक्तियां है। शब्द का उच्चारण हृदय-कण्ठ-मुख तीन प्रकार से होता है, इस प्रकार यह शब्द तीन प्रकार से बद्ध है। शब्दगत अर्थ वृष्टकरण से यह शब्द वृषभ पद वाच्य होता है। राजशेखर ने इस मन्त्र की व्याख्या अपनी काव्य मीमांसा में साहित्य शास्त्र के दृष्टी से ही की। सायण भाष्य में इसके अतिरिक्त अर्थ का ही वर्णन है। उपर वर्णित अर्थ में प्रत्येक अर्थ सम्बद्ध ही है, अत: वे सभी अर्थ स्व-स्वदृष्टी से समादरणीय और माननीय है। मन्त्र के गूढार्थ की यह ही महानता है। इन पवित्र मन्त्रों का अर्थ विविधरूप से कर सकते है। यास्क ने इस प्रसङ्ग में छ से अधिक मतो की चर्चा की है। इन चर्चा में ऐतिहासिक-वैयाकरण-परिव्राजक-याज्ञिक आदि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त विविध ग्रन्थ के समर्थक आचार्य के मतों का भी यथास्थान उल्लेख मिलता है।

पाठगत प्रश्न

467. वेद में कैसे शब्द हैं ?

468. सभी मतों में ऐकात्म्य का प्रतिपादन करते हुए निरुक्तकार ने क्या कहा ?

469. देव किस रूप में है ?

470. अग्नि शब्द किसका वाचक है ?

471. वेद मन्त्रों का अर्थ कैसे जानते है ?

472. महादेव वृषभ के कितने अङ्ग है और वे कौन से है ?

4.6 सायण भाष्य महत्त्व

आचार्य सायण ने स्वभाष्य लेखन काल में स्मृति पुराणादि ग्रन्थ से यथा आवश्यकता सहायता ली। उन्होंने परम्परागत अर्थ ही स्वीकार किया। उनके प्रमाण की पुष्टी के लिए आवश्यकतानुसार यत्र तत्र पुराण-इतिहास-स्मृति-महाभारतादि ग्रन्थ से प्रमाण एकत्र कर उल्लेख किया। वेद के अर्थ ज्ञान के लिए षड्गाध्ययन का भी महत्त्व है। सायण तो इस सिद्धान्त से पूर्ण परिचित थे। इन्होने ऋग्वेद के प्रथमाष्टक व्याख्या में शब्दों के पर्यालोचन में व्याकरण के नैपुण्य से निरूपण किया। प्राय: प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द की व्युत्पत्ति में, सिद्धि में, स्वराघात वर्णन को पाणिनीय सूत्र की सहायता से और प्रातिशाख्य सहायता से किया। सावधनतया इसके अध्ययन से समस्त ज्ञातव्य विषयों की सुन्दरता से अवबोध होता है। निरुक्त का उपयोग किया गया है इस भाष्य में। ''यास्क ने व्याख्या की है'' ऐसा सायणाचार्य उन मन्त्रों के भाष्य लेखन काल में स्पष्ट लिखा है। इसको छोड़कर सायणाचार्य ने ऋग्वेद के प्राचीन भाष्य कर्ता स्वन्द स्वामि-माधवादिकृत अर्थ भी यथा स्थान ग्रहण किया है। कल्प सूत्र का भी उपयोग सविस्तार किया स्वभाष्य में। यज्ञ विधान में तो सायण की प्रगाढ प्रतिभा परिलक्षित होती है। और भी कल्पसूत्र विषयगत आवश्यक तत्त्वों के वर्णन प्रसङ्ग में सर्वत्र अपनी विशिष्ट प्रतिभा का भी प्रदर्शन किया। सूक्त की व्याख्या के आरम्भ में ही उनके विनियोग ऋषि का, देवतादि जानने योग्य तथ्य का वर्णन प्रामाणिक ग्रन्थ का उद्धरण प्रस्तुत किया सूक्त सम्बन्धि उपलब्ध आख्यायिका भी सप्रमाण समुपस्थापित की गई। मीमांसा के विषय का भी निवेश भाष्य के आरम्भ में प्रस्तावना में बोधगम्य भाषा द्वारा प्रदत्त सायण वेदविषयक समग्र सिद्धान्त का प्रतिपादन और रहस्योद्घाटन भी किया। इसी कारण सायणकृत वेद भाष्य को गौरव प्राप्त है। अपने भाष्य में सायण ने याज्ञिक पद्धति को ही महत्त्व दिया है। उस काल में उसी की आवश्यकता थी। तब कर्मकाण्ड की प्राधानता थी। ये सब अच्छी तरह सोचकर सायण ने भाष्य निर्मित किया।

इसी कारण से मध्य में सायणाचार्य का विशिष्ट महत्त्व है। सायण भाष्य के विना वेदार्थानुशीलन की कैसी दशा होती ये कहा नहीं जा सकता है। यथेष्ट व्युत्पत्ति के आधार पर एक ही अर्थ के विरुद्ध बहुत प्रकार से अर्थ करने में प्रवृत्त पाश्चात्य पण्डितों के बीच परमगतार्थ का ही अपने भाष्य में स्थान देने वाले सायण को छोड़कर उचितमार्ग को कौन प्रदर्शित करने में समर्थ है। वस्तुत: आंग्ल की शिक्षा पद्धति को हमने स्वीकार कर लिया। आङ्गल जन स्वार्थ प्रवृत्ति से हमारे इन वेदोपनिषद् स्मृति पुराण का तिरस्कार किया, हमने भी

उनको सहन किया। आक्रान्ता स्वार्थबुद्धि वाले और अन्धे हो गये थे, परन्तु हम भी अज्ञानता से दुसरे के ज्ञान से अन्धभक्त हो गये। प्रचीनकाल के हमारे देश के राजा विद्वज्जन को अपनी सभा में आश्रय देते थे, संस्कृत अध्ययन अध्यापनार्थ अवसर और उचित वृत्तिदेते थे-

परं आज वैसी व्यवस्था कही जीवित नही दिखती है। आज इससे पुराणादि ग्रन्थ वेदार्था व बोधर्थ की परम आवश्यकता है।

सायण वैदिक सम्प्रदाय के यथार्थ ज्ञाता थे। इससे यह वेदभाष्य वस्तुतः वेदार्थ प्रतिपादक भाष्य में मूर्धन्यतम भाष्य है। जो कि दुर्गम वेद दुर्ग में सरलतया प्रवेश कराता है वेदार्थ जिज्ञासुओं का। वैदिक विद्वानों पर बहुत ऋण है सायणाचार्य का। पाश्चात्य पण्डितों ने वेदार्थाव बोधन में विपुल प्रयास किया। इस प्रयत्न में वे जो थोड़ी कुछ सफलता प्राप्त कर सके है वो सायणाचार्य की अनुकम्पा का ही फल है। सायण भाष्य की साहायता से ही ये पाश्चात्य पण्डित वैदिक मन्त्र का अर्थावबोधन में काम कर सके। किन्हीं शब्द के अर्थावबोधन में विरोधाभास के देखकर सायणाचार्य का उपहास उनके द्वारा किया गया ये और बात है। लेकिन मुख्यतः संहिता पंचक पर ऐसा सुव्यवस्थित, पूर्व पर विरोध हीन उपयोगी और पाण्डित्य पूर्ण भाष्य लेखन अतीव श्रम साध्य है। इस प्रकार की महत्ता और उपादेयता भाषा दृष्टी से भी विचारणीय है। ये वैदिक भाषा ऐसी है की जो भाषा विदो के मध्य में फैला हुआ प्राचीन भाषा विषयक मतभेद को हटाता है। अब के भाषा शास्त्र पण्डित चाहते हैं कि इनके द्वारा कहा गया विषय पूर्णतया परिपक्वता को प्राप्त हो। वे वेदों को धारण और अनुशीलन कर उस उस भाषा में समाहित पाड्रे-नाइट-फार्चून-इत्यादियों के मूलरूप को और उनके रुपान्तरता को सही कहते है। और ये भी जानते है की भौतिक अर्थ में प्रयुज्यमान पदयुगान्तर में किस प्रकार आध्यात्मिक अर्थ में प्रयुक्त होने आरम्भ हो गये। बड़े ही प्रयत्न और प्रयोजन साधक होने से वस्तुतः सायण भाष्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। और भी सायणाचार्य की अनुकम्पा से वेदार्थ में प्रविष्ट पाश्चात्य पण्डित कहते है कि - 'Las von Sayana' (सायण का बहिष्कार करो) तो वहाँ क्या आश्चर्य है और क्या वेदना। यद्यपि सायणाचार्य के भाष्य भी दोष रहित है, ऐसा भी नहीं कह सकते है। क्योकिं मानवकृति में त्रुतिराहीत कार्य की कल्पना व्यर्थ है, फिर भी सायणाचार्य परम्परागतार्थ के ज्ञाता है, यहाँ लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। सायणाचार्य के वेदभाष्य वेदार्थ ज्ञान की कुञ्जिका रूप में दिखती है। वेदों के दुर्गम दुर्ग में प्रवेश के लिए इस भाष्य में विशाल सिंह द्वार का कार्य करता है।

और अब कुछ पाश्चात्यानुसन्धानकर्ता भी सायण के महत्त्व से अपरिचित नहीं हैं। ऋग्वेद के प्रथमानुवादक आङ्गल विद्वान विल्सन महोदय की ये उक्ति अविस्मरणीय है-

'Sayana undoubtedly had a knowledge of his text far beyond the pretensions of any European scholar, and must have been in possession either through his own learning or that of his association, of all the interpretation which have been perpetuated by traditional teaching from the early times.'

–Translation of Rigveda

सायणभाष्य के प्रथम पाश्चात्य सम्पादक डा. मैक्समूलर महोदय की भी ये उक्ति दर्शनीय है–

We ought to bear in mind that five and twenty years ago, we could not have made even our first steps, we could never at least have gained a firm footing without his leading string. —Introduction to Rigveda; Edon.

वेदार्थ ज्ञान में वस्तुत: सायणाचार्य अन्धें के लिए लाठी के समान है। सौभाग्य से सायण के प्रति अब तो पाश्चात्य पण्डितों के भी विचार परिवर्तन हो गये उनमें अब उपेक्षा के स्थान पर सम्माननीय भाव दिखता है। सायण कृत वेदार्थ की प्रामाणिकता भी प्रामाणित हुई पाश्चात्य विद्वानों के सम्बन्ध में। इस विषय में जर्मनीय विद्वांन पिशल और गौल्डनर ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य को किया। दोनों विद्वानों ने 'विदिशेस्तूदियन्' (वैदिकानुशीलनम्) नामक ग्रन्थ के तीनों भागों में विविध गूढ़ वैदिक शब्दों का अनुसन्धान किया। जिससे सायणचार्य द्वारा किया अर्थ भलिभांति प्रमाणित हुआ है।

कुछ तो सायणाचार्य के ही अर्थ से ही हम संतुष्ट नही है। वेद की गभीरता और रहस्यमयता बड़ी ही गौरवास्पद है। उसी कारण विभिन्न समय में नवीन व्याख्या सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। और उन व्याख्या कर्ताओ ने अपने अपने व्याख्या कौशल से प्रतिष्ठा को प्राप्त किया ।

4.7 अरविन्द का महत्त्व

आज कल तत्त्व चिन्तक और आध्यात्म साधकों में अरविन्द महोदय मान्य और मूर्धन्य है। उनकी दृष्टी में जिन विद्वानों की वेद के प्रति असीम श्रद्धा है उनके सम्मुख में स्वत: ही एवं वैदिक शब्दों का अर्थ प्रस्फुट होता है। वेद का अर्थ रहस्यात्मक और निगूढ है। इसकी सूचना भी वेद से ही प्राप्त होती है। वैदिक ऋषियों की ये दृढ़ धारणा थी कि मन्त्र का उद्भव हृदय के अन्तरतम प्रदेश से होता है। अत: वेदों में निगूढ ज्ञान की निधिप्रक्षिप्त है। एक मन्त्र में (ऋ. 4/3/13/9) ऋषि वामदेव ने अपने आत्मा अन्त:प्राज्ञ सम्पन्नता से उपस्थापित किया। इन ऋषि ने अपनी वाणी से निगूढ़ वाक्यों की अभिव्यक्ति की। दीर्घतमा नामक ऋषि का भी ये अनुभव ही कि वेद मन्त्र नित्य, और अक्षर व्योम में निवास करते हैं। क्या जो उस परमात्मा को ही नही जानता वह ऋचाओं से क्या करेगा। उसका ऋचाओं से क्या प्रयोजन है। और कहा भी है –

''ऋचो अक्षरो परमे व्योमन्, यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदु:।
यस्तन्न वेद किं ऋचा करिष्यति य इत् तत् विदुस्त इमे समासते॥''
इति। (ऋ.1/164/69)

वैदिक मन्त्र अक्षर सम्बन्ध दिव्य उच्चतर स्तर के साथ ही हैं (ऋ.1/164/46)। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों के दिव्यत्व वैदिक प्रामाण से ही स्वत:सिद्ध होता है। और कुछ वैदिक मन्त्र तो प्रत्येक शब्द किसी भी आध्यात्मिक तत्त्व के प्रतीक होते है।

श्री अरविन्द महोदय के मत में योग और तप से विधूत पवित्र हृदय में एवं परमात्मा प्रस्फुट होता है। वैदिक शब्द आध्यात्मिक तत्त्व की ही प्रतीकता है। इसी प्रकार प्रत्येक वैदिक शब्द किसी भी शक्ति से, आध्यात्मिक सामर्थ्य के और तपोबल प्रतीक होते है। वैदिक ऋषि किसी मन्त्र में जब अश्व की प्रार्थना करता है तब उसका अर्थ अश्व रूप सामान्य घोड़ा नहीं होता है, अपितु अश्व पद से वहाँ अंतर्बल के स्फुरण के प्रति सङ्केत होता है। घृत शब्द यज्ञ के साधन भूत सामान्य घृत का बोधक है। और तो अरविन्द महोदय के मत में तो घृतशब्द का प्रकाश अर्थ भी होता है। अत एवं इन्द्र का अश्व जब 'घृतस्नु'-पद से बोधित होता है तब उसका अर्थ घृत का क्षरण नहीं होता है, अपितु प्रकाश का सर्वत्र विकिरणकर्ता ऐसा अर्थ होता है। और अग्नि पद से न केवल बाह्य वह्निपद का बोध होता है, अग्नि शब्द से यहाँ अन्तःस्फुरित चौतन्य का ही बोध होता है। यद्यपि संहिता भाग में मुख्यतः यज्ञकर्मादि प्रतिपादित है फिर भी वहाँ आत्म तत्त्व भी निहित है। उपनिषद् में अभिव्यक्त बहुत सी व्याख्या से अद्वैततत्त्व का पूर्ण सङ्केत प्राप्त होता है संहिता ग्रन्थों में जो भी विद्वान् वैदिक संहिता के मन्त्र को केवल कर्म का प्रतिपादक और कुछ उपनिषद् ज्ञान के प्रतिपादिक है ऐसा मानकर दोनों के बीच भिन्नता प्रदर्शित करते हैं तो वे सत्य से दूर हैं। संहिता ग्रन्थ कर्म के साथ ज्ञान का भी स्पष्ट प्रतिपादक है। ऋग्वेद के सिद्धान्त जैसे वेदान्त के तथ्यों का सङ्केत करते है वैसे ही उसके अन्तर्विद्यमान साधना की और नियमन शिक्षा विगत युग में प्रतिष्ठित योग के प्रति स्पष्टतया सङ्केत करते है। ऋग्वेदसंहिता में उस परम तत्त्व की आलोचना बहुत मन्त्रों में प्राप्त होती है। जैसे ''एकं तत्'' (ऋ.1/164/46), ''तदेकम्'' (ऋ.10/129/2) इत्यादि। वैदिक ऋषि इसी को परम सत्य रूप में स्वीकार करते है, अन्य देव तो उसी के शक्ति से विविध रूप से अभिव्यक्त मात्र है। इस प्रकार श्री अरविन्द के मत में वेद सिद्धों की ही वाणी है। ये वेद आन्तरिक जगत आध्यात्मिक तथ्यों के निरूपक है। इसी रूप में जिन सामान्य शब्दों का प्रयोग वेद करते है उनका अर्थ नितान्त निगूढ तथा साधना के ऊपरी भाग पर आधारित है। वेद का अर्थ मुख्यतः रहस्यमय और आत्मपरक है। इस दृष्टी से श्री अरविन्द के मत की व्याख्या के प्रति विद्वानों का ध्यानाकर्षण भी स्वाभाविक ही है।

4.8 श्रीमत आनन्दकुमार का महत्त्व

डॉ. आनन्दस्वामी आधुनिक भाषाविदों में परमतत्त्वज्ञ और गम्भीर चिन्तक थे। भारतीय कला के अन्तःस्वरूप के प्रत्यभिज्ञान में अतुलनीय तथा उस कला के विशद व्याख्याकरण और स्वविषय के विद्वान् थे। तब उनके जैसा दुर्लभ था। कलाक्षेत्र में और वैदिक क्षेत्र में पूर्ण मर्मज्ञता के साथ इन्होने प्रवेश लिया। इन्होनें उनके अन्तरङ्ग का परीक्षण और विश्लेषण बड़ी ही विद्वता के साथ किया। इस विषय में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है - 'A newApproach to the Vedas'। ग्रन्थ में वेद की विशिष्ट व्याख्या शैली का प्रदर्शन किया इस विद्वान का कथन है कि -वेद तो, सिद्धों की वाणी होती है। इसलिए उसके व्याख्या लेखन में इस्वी सन मध्ययुग के संतों और आत्मपरक कवि की अनुभूति से भी पर्याप्त साहायता

टिप्पणी

ली जा सकती है। आध्यात्मिक जगत में अति उच्चस्तर के संतों की अनुभूति में वैचारिक समानता होती ही है। उनकी अनुभूति प्रकट करने वाले प्रयुक्त प्रतीकों में तथा मूर्ति विधन में एकरूपता दृग्गोचर होती ही है। डॉ. कुमारस्वामी मध्य युगीय इसाई धर्म अनुयायि महात्मा की वाणी के मर्मज्ञ विद्वान् थे। फलतः इन्होने अपनी वैदिक व्याख्या में उनके ज्ञान का और अनुशीलन का उपयोग बड़ी ही भली प्रकार से किया। इस महापुरुष के वैदिक मन्त्रों की व्याख्या ही इसके स्पष्ट उदाहरण है। देंखे –

"As for the Vedic and Christian source each illuminates the other. And that is in itself an important contribution to understanding. What ever may be asserted or denied with respect to the value of the Vedas; this at least is certain that their fundamental doctrines are by on means singular."

(A New Approach to the Vedas- Page 9)

पाठगत प्रश्न

473. ऋग्वेद में देवता को क्यों 'असुर' इस नाम से कहा है ?

474. देवताओं के तीन रूप कौन से है ?

475. इस जगत का नियामक कौन है ?

476. अरविन्द मत में घृत शब्द का अर्थ क्या है ?

477. वेदभाष्य विषय में किन – किन विद्वानों ने भाष्य रचना की ?

पाठसार

आर्यभाषा की प्राचीनता के भेद में संस्कृत भाषा अंतर्निहित है। विभिन्न आचार्यों की दृष्टी से वेदमन्त्रों का व्याख्यान होता है। वेदमन्त्र के अर्थ निर्देशकों में यास्काचार्य सबसे प्रसिद्ध है। उन्होंने विस्तार से गूढ शब्दों का अर्थ निर्दिष्ट है।

वेदार्थ अनुसन्धान विषय में पाश्चात्य विद्वानों का एक मत है, तथा भारतीय पण्डितों के दो मत है। आध्यात्मिक पद्धति में एक ही अग्निशब्द भौतिकाग्नि, अग्निदेव का तथा परमेश्वर का वाचक होता है। चत्वारि शृङ्गाः इत्यादि मन्त्रों में यह महादेव वृषभः कौन है ऐसे प्रश्न में यास्क ने याग रूपी वृषभ को प्रतिपादित किया, दूसरों ने तो महादेव वृषभ सूर्य है ऐसा कहा है, पतञ्जलि ने पस्पशाह्निक में उस मन्त्र की शाब्दिक व्याख्या समुपस्थापित की, सायण भाष्य में तो भिन्न ही वर्णन है। सायण ने वेद के व्याख्या अवसर में इतिहास-स्मृति-पुराणादि ग्रन्थ की साहायता स्वीकार की। उनके व्याख्यान की प्रधान वैशिष्ट्य है कि उनके द्वारा वेद के प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द की व्युत्पत्ति, सिद्धि और स्वराघात

का वर्णन पाणिनीय सूत्रों की सहायता और प्रातिशाख्य की सहायता से की। सूक्त के व्याख्या के आरम्भ में ही उसका विनियोग- ऋषि-देवता-छन्द आदि तथ्यों का वर्णन उन्होंने प्रामाणिक ग्रन्थ के उद्धरण के साथ किया। दूसरे एक महान् वेद तत्त्वज्ञ है अरविन्द महोदय वे तत्त्व चिन्तक और अध्यात्म साधकों में मान्य तथा मूर्धन्य है। उनकी दृष्टि में जिन विद्वानों की वेद के प्रति असीम श्रद्ध है, उनके सम्मुख में स्वत: एव वैदिक शब्दों का अर्थ प्रस्फुट होता है। डॉ. आनन्द स्वामी आधुनिक कलाविदों में परम तत्त्वज्ञ तथा गभीर चिन्तक थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है - 'A New Approach to the Vedas'। इस ग्रन्थ में वेद विशिष्ट व्याख्या शैली प्रदर्शित की है।

पाठान्त प्रश्न

1. वेदार्थानुशीलन की परम्परा अतिप्राचीन काल से ही चली आ रही है। .. इस वचन का समर्थन करो।
2. कौत्स महोदय के पूर्वपक्ष का वर्णन करो।
3. पाश्चात्यों ने कैसे वेद की हानि की।
4. स्वामी जीव महोदय के मत को प्रस्तुत कर विभाजित करो।
5. चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा-इत्यादि श्लोक में क्या प्रतिपादित किया है ?
6. सायणभाष्य के महत्त्व को प्रतिपादित करो।
7. पाश्चात्य विद्वान् सायणाचार्य भाष्य कर्ता की क्यों निंदा करते है?
8. अरविन्द का महत्त्व बताओ।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-

478. आर्यभाषा पाश्चात्य और पौरस्त्य भेद से दो प्रकार की है।
479. संस्कृत भाषा में।
480. श्रवणान्तर दर्शनस्य योग्यता सम्पादनेन अर्वाचीनानामृषीणाम् उपयुक्तभिधा श्रुतर्षि कहा गया।
481. यास्काचार्य ने।
482. शब्द सूची ये अर्थ।

483. वेद में भाव गाम्भीर्य, भाषा वैचित्र्य, विचित्र पदों का और स्वरों की सन्धि पदों का विवेचन है।

484. दुर्गाचार्य।

उत्तराणि

485. ज्याकोबी, पिशेल, मैक्समुलर, पोल इत्यादि।

486. जल पूर्ण घट ये अर्थ।

उत्तराणि

487. सभी शब्द यौगिक, योग रूढ़ और रूढ़ है ।

488. **महाभाग्यात् देवतायाः एक आत्मा बहुध स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'** (निरुक्तः 7/4)

489. तीन रूप में होता है - आधि भौतिक, आधिदैविक और अध्यात्मिक।

490. भौतिकाग्नि के, अग्नि देव के तथा परमेश्वर के।

491. ऋषि प्रदर्शित मार्ग से तथा आर्ष दृष्टी से।

492. चत्वारि शृङ्गाणि, त्रयः पादाः, द्वे शिरसी, सप्त हस्ताश्च।

उत्तराणि

493. प्राण शक्ति शाली होने से।

494. आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

495. ईश्वर।

496. अरविन्द महोदय के मत में प्रकाश ये अर्थ होता है।

497. सायण, अरविन्द महोदय, श्रीमदानन्द कुमाराचार्य और भी अन्य है।

चौथा पाठ समाप्त